शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-5.375
Vol.-3; issue-3 (July-Sept.) 2026
Page No- 68-75
©2026 Shodhaamrit
DOI : 10.71037/Shodhaamrit.v3i3.11
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
ब्लेस्सनराजू (Blesssanraju)
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम.

Corresponding Author :
ब्लेस्सनराजू (Blesssanraju)
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम.

गिरमिटिया बनाम प्रवासी विमर्श : विस्थापन, यातना और अस्मिता का साहित्य

सारांश : हिंदी साहित्य के समकालीन विमर्शों के अंतर्गत 'प्रवासी साहित्य' ने विगत कुछ दशकों में अपनी एक अत्यंत सुदृढ़ और महत्वपूर्ण जगह बना ली है। साहित्य जगत के अधिकांश आलोचकों और शोधकर्ताओं ने अब तक 'गिरमिटिया साहित्य' को प्रायः 'प्रवासी साहित्य' के एक उप-शाखा या उसी के एक ऐतिहासिक विस्तार के रूप में देखा और विश्लेषित किया है। प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य वैचारिक और तार्किक धरातल पर यह स्थापित करना है कि हिंदी साहित्य में गिरमिटिया साहित्यिक विमर्श महज प्रवासी साहित्य का एक हिस्सा नहीं है, बल्कि यह अपने आप में एक सर्वथा अलग विधा और स्वतंत्र साहित्यिक धारा है। इस आलेख में प्रवास के स्वरूप, जीवनानुभवों, मातृभूमि से संबंध, भाषाई विकास और साहित्यिक दृष्टि के आधार पर प्रवासी साहित्य और गिरमिटिया साहित्य के बीच के तात्विक अंतरों का गहन विश्लेषण किया गया है। जहाँ आधुनिक प्रवासी साहित्य मुख्यतः स्वैच्छिक प्रवासन, वैश्वीकरण, अवसर, आधुनिक पहचान के संकट और नॉस्टैल्जिया (स्मृति) पर केंद्रित है, वहीं गिरमिटिया साहित्य उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के अनिवार्य एवं बंधुआ प्रवासन, अमानवीय औपनिवेशिक शोषण, सांस्कृतिक अस्तित्व की लड़ाई और प्रतिरोध का साहित्य है। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना, त्रिनिदाद और दक्षिण अफ्रीका जैसे देशों में विकसित इस साहित्य की भाषा (जैसे सरनामी हिंदी, फिजी बात) और संवेदना का विशिष्ट स्वरूप इसे एक अलग विमर्श के रूप में मान्यता दिए जाने की आवश्यकता को अकाट्य रूप से रेखांकित करता है।

बीज शब्द : गिरमिटिया विमर्श, प्रवासी साहित्य, अस्मिता का संघर्ष, औपनिवेशिक प्रतिरोध, सरनामी हिंदी, सांस्कृतिक विस्थापन, बंधुआ प्रवासन।

साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, बल्कि उसके ऐतिहासिक और मनोवैज्ञानिक यथार्थ का जीवंत दस्तावेज़ भी होता है। वर्तमान हिंदी साहित्य में अस्मितामूलक विमर्शों के अंतर्गत स्त्री, दलित और आदिवासी विमर्श के साथ-साथ 'प्रवासी विमर्श' भी एक महत्वपूर्ण

विमर्श के रूप में स्थापित हुआ है। भूमंडलीकरण और वैश्वीकरण के इस युग में भारत से बाहर बसे भारतीयों द्वारा रचित हिंदी साहित्य को सामान्यतः 'प्रवासी साहित्य' के अंतर्गत रखा जाता है। अकादमिक जगत में प्रायः यह मान लिया गया है कि भारत की भौगोलिक सीमाओं के बाहर लिखा गया प्रत्येक हिंदी साहित्य प्रवासी साहित्य है। इसी संदर्भ में कमल किशोर गोयनका ने प्रवासी साहित्य का व्यापक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, "1. भारत से गिरमिटिया मजदूर बनकर जाने वाले देशों में रचा हिन्दी साहित्य इन देशों में मॉरीशस फिजी, सूरीनाम, गुयाना, ट्रिनीढाड दुबेगो आदि। 2. भारत के पड़ोसी देशों में भारतवंशियों द्वारा रचा हिन्दी साहित्य नेपाल, पाकिस्तान, बंगलादेश, भूटान, श्रीलंका एवं म्यानमार (बर्मा) आदि। 3. विश्व के अन्य महाद्वीपों के देशों में रचा हिन्दी साहित्य।"[1]

इस वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि गिरमिटिया देशों में रचे गए साहित्य को प्रवासी साहित्य का ही एक भाग माना गया है। किंतु साहित्य केवल स्थान-परिवर्तन का परिणाम नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अनुभवों, सामाजिक संघर्षों और सांस्कृतिक चेतना की उपज होता है। प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य इसी धारणा का पुनर्मूल्यांकन करते हुए यह स्थापित करना है कि गिरमिटिया साहित्य की उत्पत्ति, प्रवृत्तियाँ और विकास आधुनिक प्रवासी साहित्य से मूलतः भिन्न हैं। यह केवल प्रवासन का साहित्य नहीं, बल्कि औपनिवेशिक शोषण, ऐतिहासिक छल, विस्थापन और अपनी भाषा-संस्कृति को बचाए रखने के संघर्ष का साहित्य है। इसलिए गिरमिटिया साहित्य को आधुनिक प्रवासी साहित्य के अंतर्गत सीमित न मानकर हिंदी साहित्य की एक स्वतंत्र धारा अथवा 'गिरमिटिया विमर्श' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

इस विमर्श को समझने के लिए 'गिरमिटिया' शब्द की व्युत्पत्ति और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी में दास प्रथा के उन्मूलन (1833–34 ई.) के बाद ब्रिटिश, डच और फ्रांसीसी उपनिवेशों के बागानों में श्रमिकों की आवश्यकता हुई। इसके लिए भारत के गरीब और अशिक्षित किसानों-मजदूरों को एक विशेष अनुबंध (Agreement) के आधार पर विदेश भेजा गया। भारतीयों के उच्चारण में 'Agreement' शब्द अपभ्रंश होकर 'गिरमिट' बन गया और इस अनुबंध के अंतर्गत जाने वाले श्रमिक 'गिरमिटिया' कहलाए। इस शब्द की व्याख्या करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, "'गिरमिट' शब्द से जो अर्थ प्रकट होता है, वह एग्रीमेंट से नहीं होता। दूसरा शब्द भाषा में है ही नहीं। जिस दस्तावेज में दस्तखत करके हजारों मजदूर भारत से बाहर नेपाल आदि देशों में 5 वर्ष का करार करके जाते थे या अब जाते हैं, वह दस्तावेज मजदूरों और उनके मालिकों में गिरमिट के नाम से प्रसिद्ध है। इस गिरमिट के अंतर्गत जाने वाले मजदूरों का नाम गिरमिटिया है।"[2]

यह प्रवासन स्वेच्छा का नहीं, बल्कि छल, प्रलोभन और शोषण का परिणाम था। तत्कालीन समाज में समुद्र पार करना 'काला पानी' माना जाता था। 'अरकाटियों' द्वारा भोले-भाले लोगों को बहलाकर मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, गुयाना और त्रिनिदाद आदि देशों में भेजा गया। विस्थापन, अमानवीय श्रम और सांस्कृतिक संघर्ष की यही ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आगे चलकर 'गिरमिटिया साहित्य' की आधारभूमि बनी।

गिरमिटिया साहित्य को आधुनिक प्रवासी साहित्य से अलग करने वाले अनेक तात्विक और सैद्धांतिक आधार हैं, जो इसे एक स्वतंत्र विमर्श के रूप में स्थापित करते हैं। तुलनात्मक अध्ययन से दोनों धाराओं की भिन्नताएँ निम्नलिखित बिंदुओं में स्पष्ट होती हैं।

प्रथम, प्रवास का स्वरूप दोनों के बीच सबसे बड़ा अंतर है। गिरमिटिया साहित्य 19वीं–20वीं शताब्दी के बाध्यकारी एवं बंधुआ प्रवासन (Indentured Labour) से जुड़ा है, जिसमें आर्थिक विवशता और औपनिवेशिक छल के कारण लोगों को अनुबंध के माध्यम से विदेश भेजा गया। इसके विपरीत आधुनिक प्रवासी साहित्य स्वैच्छिक प्रवासन का साहित्य है, जहाँ व्यक्ति बेहतर शिक्षा, रोजगार और जीवन-स्तर के लिए स्वयं विदेश जाता है। अर्थात् गिरमिटिया प्रवासन ऐतिहासिक निर्वासन था, जबकि आधुनिक प्रवासन एक स्वैच्छिक चुनाव है।

द्वितीय, जीवनानुभवों की दृष्टि से दोनों में मूलभूत अंतर है। गिरमिटिया साहित्य अमानवीय शोषण, कठोर श्रम, सांस्कृतिक संघर्ष और अस्तित्व की लड़ाई का साहित्य है। इसके विपरीत आधुनिक प्रवासी साहित्य में नए

समाज में समायोजन, पीढ़ीगत अंतर, प्रवासी पहचान, वैश्वीकरण और सांस्कृतिक द्वंद्व प्रमुख विषय हैं। आधुनिक प्रवासी का दुख अलगाव का है, जबकि गिरमिटिया का दुख शारीरिक, मानसिक और ऐतिहासिक यंत्रणा से उपजा है।

तृतीय, मातृभूमि से संबंध की प्रकृति भी दोनों को अलग करती है। गिरमिटिया समुदाय का भारत से संपर्क लगभग स्थायी रूप से टूट गया था। 'काला पानी', संचार के अभाव और आर्थिक असमर्थता के कारण भारत उनके लिए स्मृति और कल्पना मात्र बन गया, जिसे वे लोकगीतों और रामचरितमानस में जीवित रखते थे। इसके विपरीत आधुनिक प्रवासी इंटरनेट, हवाई यात्रा और डिजिटल संचार के माध्यम से भारत से निरंतर जुड़ा रहता है। इसलिए आधुनिक प्रवासी का 'नॉस्टैल्जिया' स्वैच्छिक दूरी का परिणाम है, जबकि गिरमिटिया का दुख अपरिवर्तनीय विच्छेद की पीड़ा है।

चतुर्थ, भाषाई स्वरूप गिरमिटिया विमर्श की विशिष्ट पहचान है। पूर्वांचल, बिहार और अवध से गए श्रमिकों की भोजपुरी, अवधी और मगही स्थानीय भाषाओं तथा अंग्रेज़ी, डच और फ्रेंच के संपर्क में आकर विकसित हुई। परिणामस्वरूप सूरीनाम में सरनामी हिंदी तथा फिजी में फिजी बात जैसी नई संकर भाषाओं का जन्म हुआ। इस संदर्भ में डॉ. राजेश कुमार 'माँझी' लिखते हैं, "इनमें काईबीती-फीजी के मूल निवासियों की भाषा, स्नाग टोंगो, सूरीनाम के मूल निवासियों की भाषा के शब्द मिल गए और हिंदी के नए भाषा रूपों ने जन्म लिया जिसे फीजी में फीजीबात, सूरीनाम में सरनामी तथा दक्षिण अफ्रीका में नेटाली नाम से जाना गया। इन सभी गिरमिट गीतों में इस नई विकसित हिंदी के सभी रूप मिलेंगे जो उनकी सांस्कृतिक विरासत का आधार बनी। सभी गिरमिट गीत चाहे वे फीजी के हों, सूरीनाम के हों, मॉरीशस या दक्षिण अफ्रीका के हों, सबकी संवेदनाएँ एक ही हैं और सबकी भाषा जनभाषा हिंदी है जो अवधी, भोजपुरी, मैथिली और खड़ीबोली मिश्रित है"[3]। इसके विपरीत आधुनिक प्रवासी साहित्य सामान्यतः मानक हिंदी अथवा अंग्रेज़ी में लिखा जाता है।

पंचम, साहित्यिक दृष्टि भी दोनों को पृथक करती है। गिरमिटिया साहित्य उपनिवेशवाद के प्रतिरोध, अस्तित्व-संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता और जड़ों को बचाए रखने का साहित्य है। वहीं आधुनिक प्रवासी साहित्य पहचान के संकट, स्मृतियों, उपभोक्तावादी संस्कृति और वैश्विक जीवन के द्वंद्वों पर केंद्रित है। इस प्रकार ऐतिहासिक, भाषाई, मनोवैज्ञानिक और वैचारिक सभी स्तरों पर गिरमिटिया विमर्श आधुनिक प्रवासी साहित्य से भिन्न एवं स्वतंत्र साहित्यिक धारा सिद्ध होता है।

गिरमिटिया साहित्य कोई एकांगी या किसी एक भौगोलिक क्षेत्र तक सीमित रचना-प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह कैरेबियाई द्वीपों से लेकर प्रशांत महासागर और अफ्रीकी महाद्वीप तक फैले हुए एक विशाल भौगोलिक और सांस्कृतिक फलक का प्रतिनिधित्व करता है। इस साहित्य के विकास में उन रचनाकारों का योगदान अविस्मरणीय है जिन्होंने अपने पूर्वजों के आंसुओं, पसीने और संघर्षों को अपनी लेखनी के माध्यम से अमर कर दिया। इस विराट साहित्यिक अवदान को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध विद्वान दयानिधि मिश्र स्पष्ट करते हैं कि, "गिरमिटिया भारतीयों से आबाद मॉरिशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद, गुयाना देशों के हिन्दी रचनाकारों के नामोल्लेख के बिना यह लेख अधूरा ही रहेगा। मॉरिशस के अभिमन्यु अनत, रामदेव धुरन्धर, प्रहलाद रामशरण, विष्णुदयाल मधुकर, 'रस पुंज' सोमदत्त बखौरी, ठाकुरदत्त पाण्डेय, नेमा डंगगूर, फिजी के कमलाप्रसाद मिश्र, जोगेन्द्रसिंह कमल, विवेकानन्द शर्मा, सूरीनाम के मुंशी रहमान ख़ान, सूर्यप्रसाद बीरे, सुरजन परोही, त्रिनीदाद के छोटनलाल, हरिशंकर आदेश, रवीन्द्र महाराज, गुयाना के पं. रामलाल, वासुदेव पाण्डेय, फिजी के स्वामी रंगनादांनद, केशवन नादन, केशवन पेरुमल आदि के नाम नागरी-हिन्दी सेवियों में उल्लेखनीय हैं।"[4]

इन सभी देशों में रचे गए साहित्य की मूल संवेदना और उसकी प्रवृत्तियों को बारीकी से समझने के लिए प्रत्येक देश के गिरमिटिया साहित्य और उसकी अंतर्निहित चेतना का गहरा अवलोकन करना नितांत आवश्यक है, जो यह प्रमाणित करेगा कि यह साहित्य किस प्रकार एक स्वतंत्र विमर्श का निर्माण करता है।

सूरीनाम का गिरमिटिया साहित्य वहाँ के हिन्दुस्तानियों के अथाह दर्द और उनकी अद्भुत जिजीविषा का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज़ है। वहाँ के साहित्य में अपनी जड़ों से उखड़ने का मलाल और एक सर्वथा अजनबी और क्रूर परिवेश में जीने की छटपटाहट बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। सूरीनाम के साहित्य की विशेषताओं को उजागर करते हुए विमलेश कांति वर्मा लिखते हैं, "सूरीनाम के सभी साहित्यकारों ने बहुत अधिक मात्रा में साहित्य भले ही न रचा हो किन्तु जितना भी साहित्य रचा गया है उसमें विषयगत विविधता है। प्रवास का दर्द, देश छोड़ने का मलाल, अपनों की याद, नई जगह पर मिले कष्ट व यातनाएँ, अपनी संस्कृति व भाषा के प्रति लगाव है। सूरीनाम के हिन्दी साहित्य में हिन्दुस्तानियों के जीवन-संघर्ष की कहानी है, उनकी प्रगति का विवेचन है, मन में उठने वाले भावों का चित्रण है।"[5] इसी असीम पीड़ा और संत्रास को सूरीनाम के चर्चित कवि अमर सिंह रमण ने अपनी कविता 'प्रवासी विरह' में बड़े ही हृदयस्पर्शी शब्दों में पिरोया है। वे अपनी व्यथा को स्वर देते हुए लिखते हैं:

"रे मुन्ना भेंट ना होइ हैं हमार।
किरवा काटिस मुड़िया में हम भाग आइली परदेश,
अपने देश माँ अंकड़त रहिली यहाँ कुली का भेश।
सात समुंदर पार हो अइली छूटा भारत देश,
रे मुन्ना भेंट ना होइ हैं हमार॥"[6]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों का यदि हम मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विश्लेषण करें, तो यह स्पष्ट होता है कि गिरमिटिया मजदूर किस कदर शोषण और बेबसी का शिकार था। अपने ही देश में जो स्वाभिमान और मान-सम्मान था, वह परदेश की धरती पर 'कुली' के भेष में बदलकर एक आजीवन कलंक बन गया। सात समुंदर पार आने के बाद अपनी संतान या प्रियजनों से कभी न मिल पाने का यह क्रंदन, आधुनिक प्रवासी साहित्य के किसी भी 'वीकेंड नॉस्टैल्जिया' या हवाई यात्रा की दूरियों से बहुत अधिक गहरा और त्रासद है। यह एक ऐसा ऐतिहासिक घाव है जो समय के साथ भरता नहीं, बल्कि पीढ़ियों तक रिसता रहता है। सूरीनाम के इन मजदूरों ने 'बैठक जैसी लोक परंपराओं के माध्यम से अपने इसी दर्द को संगीत में पिरोया, जो आज भी वहाँ की सांस्कृतिक विरासत का अभिन्न अंग है।

प्रशांत महासागर के हृदय में स्थित फिजी का सृजनात्मक साहित्य भी इसी गिरमिटिया दर्द की कोख से उपजा है, लेकिन इसके साथ ही इसमें अपनी अस्मिता और गौरव की रक्षा के लिए किया गया एक दीर्घकालिक और मुखर राजनीतिक संघर्ष भी पूरी तरह से समाहित है। फिजी के साहित्यिक परिदृश्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. राजेश कुमार 'माँझी' लिखते हैं, "फीजी के सृजनात्मक हिंदी साहित्य का इतिहास लगभग सवा सौ वर्षों का है और उसकी मूल संवेदना गिरमिट जीवन है जो प्रारंभिक लोकगीतों से लेकर आज तक लिखे जाने वाले साहितय में अविच्छिन्न रूप में दिखाई पड़ती है। विछोह की पीड़ा, क्षोभ, कष्ट, ग्लानि जहाँ प्रारंभिक रचनाओं में दिखता है वहीं आगे वह स्वदेश, स्वभाषा, स्वसंस्कृति की रक्षा, सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष, उहापोह की स्थिति-विस्थापन और प्रस्थापना और समकालीन साहित्य में फिर अतीत का वर्णन या संक्षेप में रहें तो 'स्व' के लिए संघर्ष है।"[7] फिजी के गिरमिटियों ने न केवल शारीरिक यंत्रणा सही, बल्कि बाद के दशकों में वहाँ की राजनीतिक उथल-पुथल, सैन्य तख्तापलट और नस्लीय भेदभाव का भी डटकर सामना किया। फिजी के प्रसिद्ध और सम्मानित रचनाकार जोगिन्द्र सिंह कँवल अपनी कविता 'हम भारतीयो को' में इसी संघर्षशील गौरव का आख्यान रचते हुए कहते हैं:

"कभी गिरमिट की आई गुलाबी, कभी बाढ़ों ने मार दिया
कभी रम्बूका कू कर बैठा, कभी स्पेट ने वार किया बार-बार
कठिनाईयों में फँसे पर, किसी के आगे हाथ न फैलाए
ऊबड़ खाबड़ पगडंडियों को बड़े गौरव से पार किया।"[8]

कवि ने यहाँ अत्यंत स्पष्ट और निर्भीक शब्दों में उस राजनीतिक और सामाजिक झंझावात का सजीव चित्रण किया है जिसे फिजी के भारतीयों ने झेला है। राजनीतिक एवं सैन्य तख्तापलटों के परिणामस्वरूप भारतीय मूल के लोगों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनाने तथा उन्हें राजनीतिक रूप से हाशिए पर धकेलने के संगठित प्रयास किए गए। लेकिन इन तमाम यातनाओं के बावजूद किसी के आगे हाथ न फैलाने का स्वाभिमान और 'ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों' को बड़े गौरव से पार करने की अडिग चेतना ही 'गिरमिटिया विमर्श' का मूल तत्व है। यह विमर्श केवल रोने-बिसूरने या अतीत में जीने का विमर्श नहीं है, बल्कि यह अन्याय के खिलाफ डटकर खड़े होने, प्रतिरोध करने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने का विमर्श है।

मॉरीशस, जिसे प्रायः 'छोटा भारत' कहा जाता है, के साहित्य में गिरमिटिया इतिहास की परतें बहुत गहरी और विस्तृत हैं। अंग्रेजों और फ्रांसीसी जमींदारों के दोहरे शोषण तंत्र ने वहाँ के मजदूरों का जीवन नारकीय बना दिया था। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के विषय में प्रह्लाद रामशरण विस्तार से लिखते हैं, "सन् 1834 ई. से सन् 1920 के बीच साढ़े चार लाख भारतीय मजदूर भारत के विभिन्न प्रान्तों से लाये गये, और इसी अवधि में डेढ़ लाख मजदूर, अपनी पाँच साल की पट्टी समाप्त कर स्वदेश लौटे थे। परन्तु अधिकांश लोगों ने मॉरिशस को ही अपनी मातृभूमि बना ली थी, और स्थायी रूप से यहीं रहने लगे थे। उन दिनों भारत और मॉरिशस में अंग्रेजों का शासन चलता था, परन्तु मॉरिशस में फ्रांसीसी जमींदारों का शर्तबन्द मजदूर बनकर प्रवासियों को रहना पड़ता था। जमींदारों ने प्रवासियों का खूब शोषण किया और उन्हें कभी भी सुख की साँस लेने का अवसर नहीं दिया।"[9] इसी मॉरीशस की पथरीली धरती पर भारतीयता के बीज बोने और उसे अपने पसीने से सींचने का काम वहाँ के साहित्य ने किया। मॉरीशस के प्रख्यात रचनाकार ब्रजेंद्र कुमार भगत 'मधुकर' की कविता वहाँ बसे भारतवंशियों की दशा और दिशा दोनों का अत्यंत सटीक और मार्मिक वर्णन करती है:

"छोटा हिंदुस्तान है मॉरिस, छोटा हिंदुस्तान
इस वसुधा के सभ्य निवासी, तीन लाख हैं भारतवासी।
मुक्ति के हैं सब अभिलाषी, निर्बल हों या बलवान
दीन-दुखी को रोज़ सताते, चैन की बंशी नित्य बजाते"[10]

इन पंक्तियों में एक गहरा और तीखा व्यंग्य छिपा है। 'इस वसुधा के सभ्य निवासी' कहकर कवि ने उस तथाकथित पश्चिमी सभ्यता के खोखले अहंकार पर सीधे चोट की है, जो स्वयं को दुनिया का सबसे सभ्य समाज मानकर दीन-दुखियों को सताती थी और उनके शोषण के बल पर 'चैन की बंशी' बजाती थी। यह कविता मुक्ति की उस सामूहिक और प्रखर अभिलाषा का दस्तावेज़ है, जिसने बाद में मॉरीशस के स्वाधीनता संग्राम और राजनीतिक चेतना को जन्म दिया, जिसके परिणामस्वरूप आज मॉरीशस में भारतीय मूल के लोगों का सशक्त राजनीतिक और सामाजिक प्रभुत्व है।

गुयाना और त्रिनिदाद एंड टोबैगो जैसे सुदूर कैरेबियाई देशों में भी गिरमिटिया साहित्य ने अपनी एक अलग और विशिष्ट राह बनाई। यद्यपि वहाँ भारत से भौगोलिक दूरियां बहुत अधिक थीं और पश्चिमी संस्कृति तथा ईसाई मिशनरियों का प्रभाव अत्यंत तीव्र था, फिर भी भाषा और धर्म के माध्यम से वहाँ के गिरमिटियों ने अपनी जड़ों को सूखने नहीं दिया। गुयाना के संदर्भ में हिंदी और भारतीय संस्कृति के संरक्षण पर प्रकाश डालते हुए महिपाल सिंह और देवेंद्र मिश्र रेखांकित करते हैं, "फ्रेंच, गुयाना और ब्रिटिश गुयाना में भी आर्य समाज द्वारा स्थापित पाठशालाओं तथा अन्य धार्मिक-सांस्कृतिक संस्थानों में हिंदी जानने वालों की एक नई पौध तैयार हो रही है।"[11]

इसी प्रकार त्रिनिदाद में हिंदी की वर्तमान स्थिति और उसके सामाजिक प्रयोग पर चर्चा करते हुए एक अन्य विद्वान लिखते हैं, "त्रिनिदाद में हिंदी का प्रयोग दो स्तरों पर हो रहा है। एक है-प्रवासी भारतीय मूल के परिवारों में और दूसरे हिंदी सेवी संस्थाओं में। भारतीय प्रवासियों का त्रिनिदाद जाना और उनकी अभिव्यक्ति की माध्यम-भाषा हिंदी का बना रहना और पीढ़ियों के अंतर के बाद उसमें बदलाव भी आना, यह सब परिस्थितिजन्य ही कहा जाएगा।"[12]

त्रिनिदाद की सशक्त कवयित्री आशा मोर की कविता 'माँ' इस विमर्श की एक अनूठी और अत्यंत जटिल मनोवैज्ञानिक ग्रंथि को खोलती है, जहाँ जन्म देने वाली भारत भूमि और पालने वाली कर्मभूमि (त्रिनिदाद) के बीच एक अद्भुत सामंजस्य स्थापित किया गया है:

"माँ ने मुझको जन्म दिया, पिता ने मुझको पाला।
भारत माँ का उपकार बड़ा है, सदैव गर्व से पहनाऊँ माला।
भारत माँ की गोद छोड़कर, इस धरती माँ पर आई हूँ।
अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा करना, यह संस्कार साथ में लाई हूँ।
पर भूली नहीं जननी माँ, भूली नहीं भारत माँ।
दोनों की ही याद सँजोए, इस धरती माँ पर आई हूँ"[13]

यह कविता गिरमिटिया चेतना के उस परिपक्व और उदात्त स्वरूप का उदाहरण है, जहाँ अब केवल भारत वापसी का क्रंदन या विलाप नहीं है, बल्कि उस नई धरती को भी 'माँ' के रूप में पूर्ण आदर के साथ स्वीकार करने की उदारता है। यह वह मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक संक्रमण बिंदु है जो इस विमर्श को एक नई ऊंचाई और दार्शनिक गहराई देता है। अपनी मूल संस्कृति के संस्कारों को सहेजकर बचाते हुए नई धरती को अपना लेना, आधुनिक प्रवासी साहित्य के 'अस्तित्व के संकट' से एकदम भिन्न एक सकारात्मक और समाधानपरक दृष्टि है।

दक्षिण अफ्रीका का ऐतिहासिक संदर्भ भी गिरमिटिया साहित्य के विमर्श में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि यही वह भूमि है जहाँ महात्मा गांधी ने रंगभेद और गिरमिटिया प्रथा के विरुद्ध अपना पहला ऐतिहासिक सत्याग्रह किया था, जिसने बाद में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दिशा ही बदल दी। दक्षिण अफ्रीका में भाषा का जो स्थानीयकरण हुआ, उसने मजदूरों को एक नई अस्मिता और एकजुटता प्रदान की। इस संबंध में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि, "दक्षिण अफ़्रीका की हिंदी को नेटाली कहा जाता है". मतलब यहाँ की स्थानीय हिंदी को नाताली/नेटाली नाम से जाना गया है। "[14] इसी दमघोंटू और शोषक परिवेश में रची गई मालती रामबली की कविता गिरमिटिया मजदूरों के खोखले कर दिए गए जीवन, उनके टूटते सपनों और उनकी लाचारी का सबसे मार्मिक आख्यान प्रस्तुत करती है:

"पाँच साल बीत गये मेहनत करके थक गये
एक शिलिंग वेतन के लिए खून पसीना पी गये।
अब समय आया है वापस घर जाने का
क्या मिल पाएगा
फिर एक मौका ज़मीदार की तिजोरी भरने का ?
कठिनाइयां जरूर आएंगी ही
सूखी रोटी के बिना भी काम करना है
बच्चों के रोगों ने बना लिया है मन कमज़ोर।"[15]

इस कविता की पंक्तियों में निहित अर्थों की परतें यदि हम उधेड़ें, तो यह निर्मम सत्य सामने आता है कि पांच वर्ष के 'गिरमिट' (अनुबंध) के समाप्त होने पर जो स्वदेश लौटने की लालसा मजदूर के मन में थी, वह किस प्रकार आर्थिक लाचारी के सामने दम तोड़ देती थी। मात्र 'एक शिलिंग' के अल्प वेतन में दिन-रात खून-पसीना एक करने के बाद भी मजदूर इतना धन नहीं जोड़ पाता था कि वह जहाज का टिकट खरीदकर वापस लौट सके। जमींदार की तिजोरी भरने का तीखा व्यंग्य, सूखी रोटी नसीब न होने का यथार्थ और कुपोषण से बीमार बच्चों के कारण कमज़ोर पड़ता पिता का मन—यह सब आधुनिक प्रवासी साहित्य के चमकदार, सुविधाभोगी और महानगरीय नॉस्टैल्जिया से कोसों दूर एक ऐसा क्रूर यथार्थ है, जिसे केवल और केवल गिरमिटिया साहित्य के स्वतंत्र विमर्श के चश्मे से ही देखा और समझा जा सकता है।

गिरमिटिया साहित्य के विमर्श को पूर्णता में समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि इस साहित्य ने सांस्कृतिक अस्मिता के संरक्षण का एक व्यापक आंदोलन खड़ा किया। आधुनिक प्रवासी समाज जहाँ इंटरनेट, सिनेमा और डिजिटल माध्यमों के सहारे अपनी भाषा और संस्कृति को सहज सुरक्षित रख सकता है, वहीं उन्नीसवीं शताब्दी के गिरमिटिया श्रमिकों के पास न शिक्षा थी, न तकनीकी संसाधन और न ही सामाजिक-राजनीतिक अधिकार। ऐसे प्रतिकूल और अमानवीय परिवेश में उन्होंने लोकगीतों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा मौखिक परंपराओं के माध्यम से अपनी भाषा, धर्म और सांस्कृतिक पहचान को जीवित रखा।

गिरमिटिया समाज में सांस्कृतिक संरक्षण केवल स्मृति का विषय नहीं था, बल्कि अस्तित्व और अस्मिता का प्रश्न था। मॉरीशस में आज भी झाल बजाकर रामायण का सामूहिक पाठ तथा महिलाओं की गीत-गवई परंपरा जीवंत है। इसी सांस्कृतिक निरंतरता की ओर संकेत करते हुए प्रवीण कुमार झा लिखते हैं— "मॉरीशस में 'झाल' बजाकर रामायण पाठ, या महिलाओं की गीत-गवई परम्परा आज भी प्रचलित है। महाशिवरात्रि सबसे धूम-धाम से मनाया जाने वाला पर्व है।"[16] यह उदाहरण स्पष्ट करता है कि गिरमिटिया समाज ने अपनी सांस्कृतिक जड़ों को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा, बल्कि उन्हें नई पीढ़ियों तक भी पहुँचाया।

इसी प्रकार सूरीनाम में भी भारतीय सांस्कृतिक परंपराएँ आज तक सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बनी हुई हैं। पुष्पिता अवस्थी के अनुसार, "हिंदुस्तानी परिवार अपने अनेक महत्त्वपूर्ण उत्सवों के साथ-साथ अपने त्यौहारों, विवाह, जन्मदिवस आदि पर संगीत-नृत्य का कार्यक्रम रखते हैं... जैसे-जैसे पुरानी पीढ़ी समाप्त हो रही है, वैसे-वैसे लोक-संगीत और हिंदुस्तानी संगीत का चलन कम होता जा रहा है; बम्बइया फिल्मों का संगीत हर हिंदुस्तानी के घर में गूँजता रहता है।"[17] यह कथन दर्शाता है कि समय के साथ सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के स्वरूप में परिवर्तन अवश्य आया है, किंतु भारतीय सांस्कृतिक चेतना आज भी प्रवासी जीवन का महत्वपूर्ण आधार बनी हुई है।

दिनभर कठिन श्रम के उपरांत गिरमिटिया श्रमिक ढोलक, मंजीरे और झाल की थाप पर अपनी पीड़ा, संघर्ष और आशाओं को गीतों में अभिव्यक्त करते थे। बैठक गाना और चौताल जैसी लोकपरंपराएँ उनके सामूहिक जीवन की शक्ति बनीं। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस ने उनके जीवन में आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संबल प्रदान किया। राम के वनवास में उन्होंने अपना निर्वासन और रावण के अत्याचारों में औपनिवेशिक शोषण का प्रतिबिंब देखा। इस प्रकार रामचरितमानस ने केवल धार्मिक ग्रंथ के रूप में ही नहीं, बल्कि हिंदी, अवधी और भोजपुरी की भाषिक-सांस्कृतिक परंपरा को सुरक्षित रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गिरमिटिया देशों में भाषा, साहित्य और संस्कृति के संरक्षण एवं विकास में आर्य समाज का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम और गुयाना में गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं तथा हिंदी शिक्षण संस्थानों की स्थापना ने हिंदी को संस्थागत आधार प्रदान किया। परिणामस्वरूप अभिमन्यु अनत, जोगिन्द्र सिंह कँवल, रामदेव धुरंधर और अनेक अन्य साहित्यकारों ने गिरमिटिया अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। इस दृष्टि से गिरमिटिया साहित्य केवल विरह और विस्थापन का साहित्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतिरोध, संरक्षण और पुनर्निर्माण का साहित्य है।

अकादमिक दृष्टि से प्रत्येक साहित्यिक विमर्श अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से जन्म लेता है। जिस प्रकार दलित विमर्श जातिगत वर्चस्व के प्रतिरोध और स्त्री-विमर्श पितृसत्तात्मक संरचनाओं के विरोध से विकसित हुआ, उसी प्रकार गिरमिटिया विमर्श औपनिवेशिक शोषण, बंधुआ श्रम, भाषाई विलोपन और भौगोलिक निर्वासन की ऐतिहासिक त्रासदी से उत्पन्न हुआ। इसलिए इसे केवल आधुनिक प्रवासी साहित्य की व्यापक श्रेणी में समाहित करना इसकी ऐतिहासिक विशिष्टता और वैचारिक स्वतंत्रता को कमतर आँकना होगा।

निष्कर्ष : समग्र विवेचन, ऐतिहासिक साक्ष्यों और काव्यात्मक विश्लेषण के उपरांत यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि प्रवासी साहित्य और गिरमिटिया साहित्य के बीच का अंतर केवल समय, भूगोल या कालखंड का

नहीं है, बल्कि यह अंतर अनुभव की मूल प्रकृति, विस्थापन के ऐतिहासिक कारणों, मातृभूमि से विच्छेद की तीव्रता, भाषाई विकास की जटिलताओं और रचनाकार की मूल वैचारिक दृष्टि का है। गिरमिटिया साहित्य उस 'अनिवार्य और बंधुआ प्रवासन' का साहित्य है, जिसमें अमानवीय शोषण की इंतहा थी, जबकि आधुनिक प्रवासी साहित्य उस 'स्वैच्छिक प्रवासन' का साहित्य है, जिसमें विकास और वैश्वीकरण के अवसर की अनंत संभावनाएं हैं। गिरमिटिया साहित्य ने हिंदी साहित्य को 'सरनामी हिंदी' और 'फिजी बात' जैसे नए भाषाई मुहावरे दिए, जिन्होंने लोकभाषा और औपनिवेशिक भाषाओं के बीच एक अद्भुत भाषाई पुल का निर्माण किया। इस साहित्य ने रामचरितमानस, बैठक गाना और लोकगीतों के माध्यम से प्रतिरोध की एक ऐसी मूक लेकिन प्रखर संस्कृति रची, जिसने कैरेबियाई और प्रशांत द्वीपों में भारतीयता को मरने नहीं दिया। गिरमिटिया विमर्श को प्रवासी साहित्य के वृहद् और आधुनिक आवरण से बाहर निकालकर उसे एक स्वतंत्र, विशिष्ट और स्वायत्त साहित्यिक धारा (विमर्श) के रूप में पूर्ण मान्यता और सम्मान प्राप्त होना चाहिए।

संदर्भ :

1. गोयनका, कमल किशोर, "हिन्दी का प्रवासी साहित्य", साक्षात्कार, प्रवासी भारतीय हिन्दी लेखन विशेषांक, अंक 329–351, मई–जुलाई 2007, पृ. 16–17।
2. शर्मा, रामविलास, गांधी, आम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 57।
3. माँझी, राजेश कुमार (संपा.), फीजी में हिंदी : विविध प्रसंग, सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2021, पृ. 44।
4. मिश्र, दयानिधि (संपा.), हिंदी भाषा : परंपरा, प्रयोग और सम्भावनाएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृ. 105।
5. वर्मा, विमलेश कांति एवं सक्सैना, भावना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 20।
6. वर्मा, विमलेश कांति एवं सक्सैना, भावना, सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 20।
7. माँझी, राजेश कुमार (संपा.), फीजी में हिंदी : विविध प्रसंग, सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2021, पृ. 73।
8. कँवल, जोगिन्द्र सिंह, "हम भारतीयों को", फीजी में हिंदी : विविध प्रसंग, संपा. डॉ. राजेश कुमार 'माँझी', सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2021, पृ. 70।
9. रामशरण, प्रह्लाद, मॉरीशस आर्य समाज आंदोलन का स्वरूप, आत्माराम एण्ड संस, लखनऊ, 2004, पृ. 15।
10. भगत, ब्रजेंद्र कुमार 'मधुकर', "छोटा हिंदुस्तान", प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, संपा. विमलेश कांति वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016, पृ. 176।
11. सिंह, महिपाल एवं मिश्र, देवेंद्र, विश्व बाजार में हिंदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 122।
12. शुक्ल, त्रिभुवननाथ, हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण और मानकीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 38।
13. मोर, आशा, "माँ", हिन्दी भाषा के अंतरराष्ट्रीय विकास में प्रवासी हिन्दी साहित्य का योगदान, डॉ. ऋतु वर्मा, एस.जी.एस.एच. प्रकाशन, मुंबई, 2026, पृ. 95।
14. वर्मा, विमलेश कांति, "प्रवासी हिंदी : इतिहास, स्वरूप एवं समस्याएँ", विश्वा हिंदी पत्रिकायन, 9 जून 2021।
15. रामबली, मालती, "वापस जाऊँ", प्रवासी भारतीय हिंदी साहित्य, संपा. विमलेश कांति वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2016, पृ. 144।
16. झा, प्रवीण कुमार, कूली लाइन्स, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ. 77।
17. अवस्थी, पुष्पिता, सूरीनाम, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2012, पृ. 67।

•